शतरंज के खिलाडी
मुंशी प्रेमचंद

शतरंज के खिलाड़ी

मुन्शी प्रेमचन्द

शतरंज के खिलाड़ी

वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफीम की पीनक ही के मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य-क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला-कौशल में, उद्योग-धन्धों में, आहार-विहार में, सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। कर्मचारी विषय-वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमें, इत्र, मिस्सो और उबटन का रोजगार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की

लड़ाई के लिए पाली बदी जा रही है। कही चौसर बिछी हुई है। पौ बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फकीरों को पैसे मिलते तो वे रोटियाँ न लेकर अफीम खाते या मदक पीते। शतरंज, ताश, गंजीफा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है, ये दलीलें जोर के साथ पेश की जाती थीं। (इस सम्प्रदाय के लोगों से दुनिया अब भी खाली नहीं है। इसलिए अगर मिर्जा सज्जाद अली और मीर रोशन अली अपना अधिकांश समय बुद्धि-तीव्र करने में व्यतीत करते थे तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपति हो

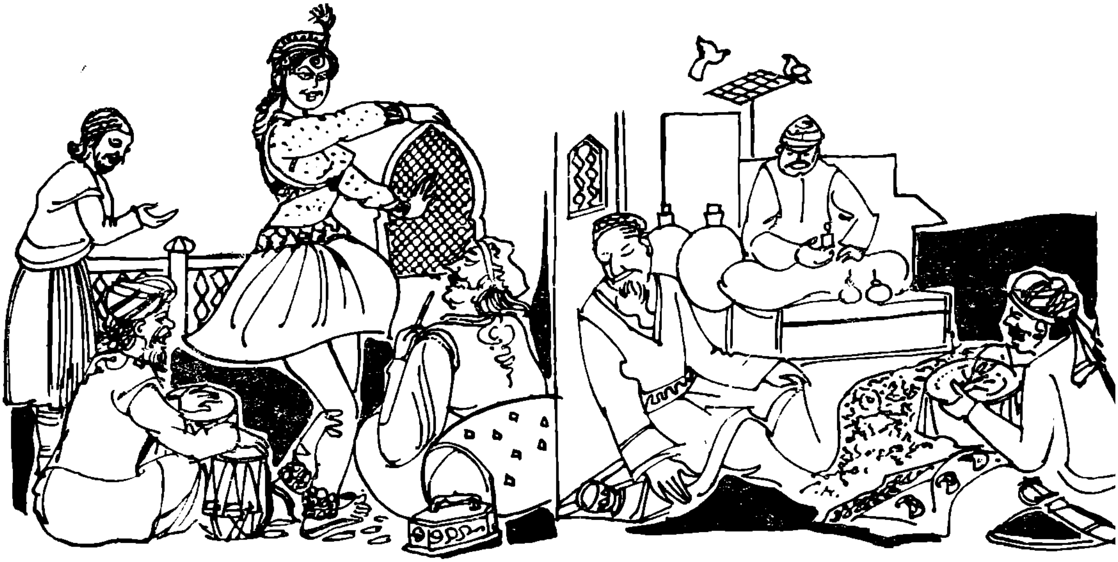

सकती थी ? दोनों के पास मौरूसी जागीरें थीं, जीविका की कोई चिन्ता न थी। घर में बैठे चखौतियाँ करते। आखिर और करते ही क्या ? प्रातःकाल दोनों मित्र नाश्ता करके बिसात बिछा कर बैठ जाते, मुहरे सज जाते और लड़ाई के दाँवपेंच होने लगते थे। फिर खबर न होती थी कि कब तीसरा पहर, कब शाम। घर के भीतर से बार-बार बुलावा आता था—'खाना तैयार है।' यहाँ से जवाब मिलता—'चलो आते हैं, दस्तरख्वान बिछाओ। यहाँ तक कि बाबरची विवश होकर कमरे ही में खाना रख जाता था, और दोनों मित्र दोनों काम साथ-साथ करते थे। मिर्जा सज्जाद अली के घर में कोई बड़ा-बूढ़ा न था, इसलिए उन्हीं के दीवानखाने में बाजियाँ होती थीं; मगर यह बात न थी कि मिर्जा के घर के और लोग

उनके इस व्यवहार से खुश हों। घरवाली का तो कहना ही क्या, मुहल्ले वाले घर के नौकर-चाकर तक नित्य द्वेषपूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे—'बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। खुदा न करे किसी को इसकी चाट पड़े। आदमी दीन दुनिया किसी के काम का नहीं रहता, न घर का न घाट का। बुरा रोग है। यहाँ तक कि मिर्जा की बेगम साहबा को इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज-खोजकर पति को लताड़ती थीं। पर उन्हें इसका अवसर मुश्किल से मिलता था। वह सोचती ही रहती थी, तब तक उधर बाजी बिछ जाती थी। और रात को जब सो जाती थी, तब कहीं मिर्जा जी भीतर आते थे। हाँ, नौकरों पर वह अपना गुस्सा उतारती रहती थीं—'क्या पान मांगे हैं? कह दो, आकर ले जायँ। खाने की भी फुर्सत नहीं है? ले जाकर खाना सिर पर पटक दो, खायँ चाहे कुत्ते को खिलावें।' पर रूबरू वह भी कुछ न कह सकती थीं। उनको अपने पति से उतना मलाल न था कि जितना मीर साहब से। उन्होंने उसका नाम 'मीर बिगाड़ू' रख छोड़ा था। शायद मिर्जा जी अपनी सफाई देने के लिए सारा इल्जाम मीर साहब ही के सिर थोप देते थे।

× × ×

एक दिन बेगम साहबा के सिर में दर्द होने लगा। उन्होंने लौंडी से कहा–'जाकर मिर्जा साहब को बुला ला। किसी हकीम के यहाँ से दवा लायें। दौड़, जल्दी कर।' लौंडी गयी तो मिर्जा ने कहा— चल, अभी आते हैं। बेगम साहबा का मिजाज गरम था। इतनी ताव कहाँ कि उनके सिर

में दर्द हो, और पति शतरंज खेलता रहे। चेहरा सुर्ख हो गया। लौंडी से कहा—'जाकर कह, अभी चलिए, नहीं तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जायँगो।' मिर्जा जी बड़ी दिलचस्प बाजी खेल रहे थे; दो ही किश्तों में मीर साहब को मात हुई जाती थी, झुंझला कर बोले—'क्या ऐसा दम लबों पर है ? जरा सब्र नहीं होता ?'

मिर्जा सज्जादअली और मीर रोशनअली शतरंज में मगन।
बावर्ची को जवाब मिला—चलो आते हैं दस्तरख्वान बिछाओ।

मीर--अरे तो जाकर सुन ही आइए न। औरतें नाजुक-मिजाज होती ही हैं।

मिर्जा—जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ। दो किश्तों में आपको मात होती है।

मीर—जनाब, इस भरोसे में न रहिएगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहें, और मात हो जाय। पर जाइए, सुन आइए, क्यों ख्वाहमख्वाह उनका दिल दुखाइएगा ?

मिर्जा—इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर—मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइए।

मिर्जा—अरे यार, जाना ही पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर-दर्द खाक नहीं है, मुझे परेशान करने का बहाना है।

मिर्जा साहब अन्दर गये तो बेगम साहिबा ने त्योंरियां बदल कर, कराहते हुए कहा—
तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है।

मीर—कुछ भी हो; उनकी खातिर तो करनी ही पड़ेगी।

मिर्जा अच्छा, एक चाल और चल लूँ।

मीर—हरगिज नहीं, जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरे में हाथ न लगाऊँगा।

मिर्जा साहब मजबूर होकर अन्दर गये तो बेगम साहबा ने त्योरियां बदलकर, लेकिन कराहते हुए, कहा—तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है! चाहे कोई मर ही जाय, पर उठने का नाम नहीं लेते! नौज कोई तुम जैसा आदमी हो!

मिर्जा—क्या कहूँ, मीर साहब मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ा कर आया हूँ।

बेगम—क्या जैसे वह खुद निखट्टू हैं, वैसे ही सबको समझते हैं? उनके भी बाल-बच्चे हैं, या सबका सफाया कर डाला है!

मिर्जा—बड़ा लती आदमी है। जब आ जाता है तब मजबूर हो कर मुझे खेलना ही पड़ता है।

बेगम—दुत्कार क्यों नहीं देते?

मिर्जा—बराबर के आदमी हैं, उम्र में, दर्जे में, मुझसे दो अंगुल ऊँचे ! मुलाहिजा करना ही पड़ता है ।

बेगम—तो मैं ही दुत्कार देती हूँ । नाराज हो जायेंगे, हो जायँ । कौन किसी की रोटियाँ चला देता है । रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी । हिरिया, बाहर से शतरंज उठा ला । मीर साहब से कहना, मियाँ अब न खेलेंगे, आप तशरीफ ले जाइए ।

मिर्जा—हाँ-हाँ, कहीं ऐसा गजब भी न करना ! जलील करना चाहती हो क्या ?—ठहर हिरिया, कहाँ जाती है !

बेगम—जाने क्यों नहीं देते ? मेरे ही खून पिये, जो उसे रोके । अच्छा, उसे रोका, मुझे रोको तो जानूं ।

यह कहकर बेगम साहबा झल्लायी हुई दीवानखाने की तरफ चलीं । मिर्जा बेचारे का रंग उड़ गया । बीबी की मिन्नतें करने लगे—'खुदा के लिए, तुम्हें हजरत हुसैन की कसम । मेरी ही मैयत देखे, जो उधर जाय ।' लेकिन बेगम ने एक न मानी । दीवानखाने के द्वार तक चली गयीं । पर एकाएक परपुरुष के सामने जाते हुए पाँव बँध से गये । भीतर झाँका, संयोग से कमरा खाली था; मीर साहब ने दो-एक मुहरे इधर-उधर कर दिए थे और अपनी सफाई बताने के लिए बाहर टहल रहे थे । फिर क्या था, बेगम ने अन्दर पहुँच कर बाजी उलट दी; मुहरे कुछ तख्त के नीचे फेंक दिये, कुछ बाहर और किवाड़ अन्दर से बन्द करके कुंडी लगा दी । मीर साहब दरवाजे पर तो थे ही, मुहरे बाहर फेंके जाते देखे,

 बेगम ने झल्लाकर बाजी उलट दी। मिर्जा देखते रहे।

चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर दरवाजा बन्द हुआ, तो समझ गए बेगम साहबा बिगड़ गयीं। घर की राह ली।

मिर्जा ने कहा—तुमने गजब किया।

बेगम—अब, मीरसाहब इधर आये तो खड़े-खड़े निकलवा दूंगी। इतनी लौ खुदा में लगाते तो क्या गरीब हो जाते? आप तो शतरंज खेलें और मैं यहाँ चूल्हे-चक्की की फिक्र में सिर खपाऊँ! बोलो, जाते हो हकीम साहब के यहाँ कि अब भी ताम्मुल है?

मिर्जा घर से निकले तो हकीम के घर जाने के बदले मीर साहब के घर पहुंचे, और सारा वृत्तान्त कहा। मीर साहब बोले—मैंने तो जब मुहरे बाहर आते देखे, तभी ताड़ गया। फौरन भागा। बड़ी गुस्सेवर मालूम होती हैं। मगर आपने उन्हें यों सिर चढ़ा रखा है यह मुनासिब नहीं। उन्हें इससे क्या मतलब कि आप बाहर क्या करते हैं। घर का इन्तजाम करना उनका काम है, दूसरी बातों से उन्हें क्या सरोकार?

मिर्जा—खैर, यह तो बताइए, अब कहाँ जमाव होगा?

मीर—इसका क्या गम? इतना बड़ा घर पड़ा हुआ है? बस यहीं जमें।

मिर्जा—लेकिन बेगम साहबा को कैसे मनाऊँगा? जब घर पर बैठा रहता था तब तो वह इतना बिगड़ती थीं, यहाँ बैठक होगी तो शायद जिन्दा न छोड़ेंगी।

मीर—अजी बकने भी दीजिए, दो-चार रोज में आप ही ठीक हो जायेंगी। हाँ, आप इतना कीजिए कि आज से जरा तन जाइए!

× × × ×

मीर साहब की बेगम किसी अज्ञात कारण से उनका घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थीं। इसलिए वह उनके शतरंज-प्रेम की कभी आलोचना न करती बल्कि कभी-कभी मीर साहब को देर हो जाती तो

मीर साहब की बेगम से नौकर ने फरियाद की

याद दिला देती थीं। इन कारणों से मीर साहब को भ्रम हो गया था कि मेरी स्त्री अत्यन्त विनयशील और गम्भीर है। लेकिन जब दीवानखाने में बिसात बिछने लगी, और मीर साहब दिन भर घर में रहने लगे तो उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता में बाधा पड़ गयी। दिन भर दरवाजे पर झाँकने को तरस जातीं।

हमें तो कोई शिकायत नहीं, मगर यह खेल मनहूस है।

उधर नौकरों में काना-फूसी होने लगी। अब तक दिन भर पड़े-पड़े मक्खियाँ मारा करते थे। घर में चाहे कोई आवे, चाहे कोई जाय, इनसे कुछ मतलब न था। आठों पहर की धौंस हो गयी। कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई लाने का। और हुक्का तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था। वे बेगम साहब से जा-जा कर कहते—हुजूर, मियाँ की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गयी! दिन भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गये। यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे तो शाम ही कर दी। घड़ी, आध घड़ी दिल-

बहलाव के लिए खेल लेना बहुत है। खैर, हमें तो कोई शिकायत नहीं, हुजूर के गुलाम हैं, जो हुक्म होगा बजा ही लावेंगे; मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलने वाला कभी पनपता नहीं, घर पर कोई न कोई ग्राफत जरूर ग्राती है। यहाँ तक कि एक के पीछे मुहल्ले के मुहल्ले तबाह हो जाते देखे गये हैं। सारे मुहल्ले में यही चर्चा होती रहती है। हुजूर का नमक खाते हैं। ग्रपने ग्राका की बुराई सुन-सुन कर रंज होता है। मगर क्या करें? इस पर बेगम साहिबा कहतीं—मैं तो, खुद इसको पसन्द नहीं करती, पर किसी की सुनते ही नहीं, क्या किया जाय?

मुहल्ले में भी दो-चार पुराने जमाने के लोग थे। वे ग्रापस में भाँति-भाँति के ग्रमंगल की कल्पनाएँ करने लगे--ग्रब खैरियत नहीं है। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का खुदा ही हाफिज। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी। ग्रासार बुरे हैं।

राज्य में हाहाकार मचा हुग्रा था। प्रजा दिन-दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फरियाद सुनने वाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिंची चली ग्राती थी, ग्रौर वह वैश्याग्रों में, भाँड़ों में ग्रौर विलासता के ग्रन्य ग्रंगों की पूर्ति में उड़ जाती थी। ग्रँगरेजी कम्पनी का ऋण दिन-दिन बढ़ जाता था। कमली दिन-दिन भीग कर भारी होती जाती थी। देश में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था। रेसिडेंट बार-बार चेतावनी देता था, पर यहाँ तो लोग विलासिता के नशे में चूर थे। किसी के कानों पर जूं न रेंगती थी।

खैर, मीरसाहब के दीवानखाने में शतरंज होते कई महीने गुजर गये। नये-नये नक्शे हल किये जाते, नये-नये किले बनाये जाते, नित-नयी व्यूह रचना होती; कभी-कभी खेलते-खेलते भीड़ हो जाती। तू-तू मैं-मैं तक की नौबत आ जाती। पर शीघ्र ही दोनों में मेल हो जाता। कभी-कभी ऐसा भी होता कि बाजी उठा दी जाती, मिर्जा जी रूठ कर अपने घर चले जाते, मीर साहब अपने घर में जा बैठते। पर रात भर निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शान्त हो जाता था। प्रातःकाल दोनों मित्र दीवानख़ाने में आ पहुँचते थे।

\+ \+ \+

एक दिन दोनों मित्र बैठे शतरंज की दलदल में गोते खा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार एक बादशाही फौज का अफसर मीर साहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीर साहब के होश उड़ गये। यह क्या बला सिर पर आयी? यह तलबी किसलिये हुई? अब खैरियत नहीं नजर आती! घर के दरवाजे बन्द कर लिये। नौकर से बोले—कह दो, घर में नहीं हैं।

सवार—घर में नहीं, तो कहाँ हैं?

नौकर—यह मैं नहीं जानता। क्या काम है?

सवार—काम तुझे क्या बतलाऊँ? हुज़ूर में तलबी है—शायद फौज के लिए कुछ सिपाही माँगे गये हैं। जागीरदार हैं कि दिल्लगी? मोरचे पर जाना पड़ेगा तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा।

नोकर—अच्छा तो जाइए, कह दिया जायगा।

सवार—कहने की बात नहीं। कल मैं खुद आऊँगा। साथ ले जाने का हुक्म हुआ है।

सवार चला गया। मीर साहब की आत्मा कांप उठी। मिर्जा जी से बोले—कहिए जनाब, अब क्या होगा ?

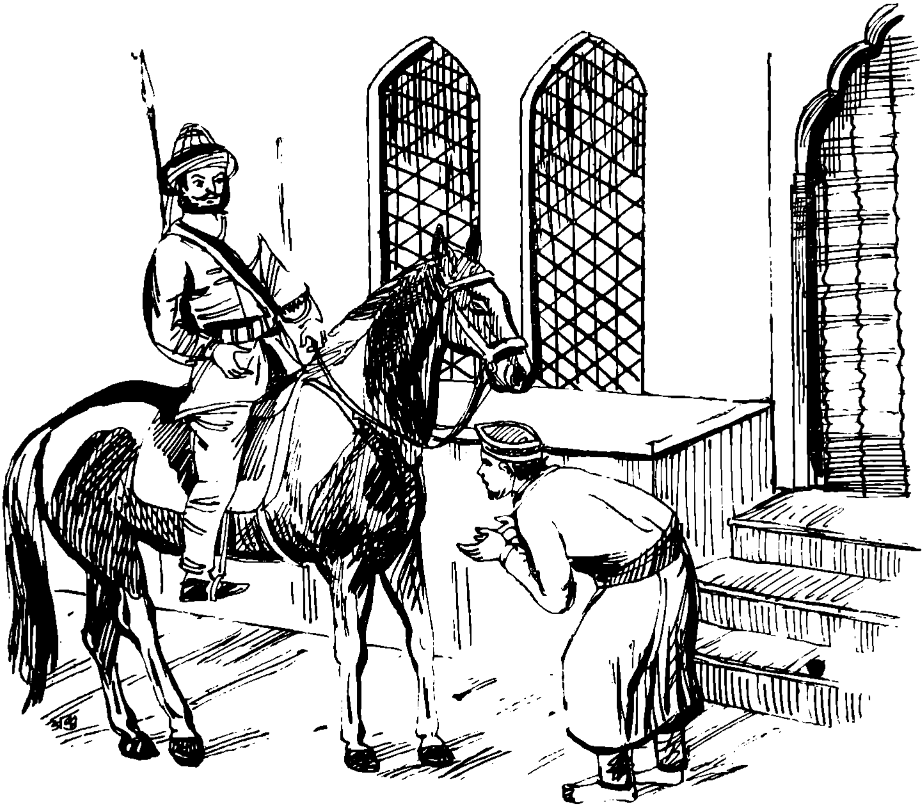

मीर साहब के घर बादशाही फौज का अफसर पहुँचा।
नौकर ने कहा—घर में नहीं हैं।

मिर्जा—बड़ी मुसीबत है। कहीं मेरी भी तलबी न हो।

मीर—कम्बख्त कल आने को कह गया है।

मिर्जा—आफत है, और क्या! कहीं मोरचे पर जाना पड़ा तो बे मौत मरे।

मीर—बस, यही एक तदबीर है कि घर पर मिलें ही नहीं। कल से गोमती पर कहीं वीराने में नक्शा जमे। वहां किसे खबर होगी? हजरत आकर लौट जायेंगे।

मिर्जा—वल्लाह, आपको खूब सूझी! इसके सिवा और कोई तदबीर नहीं है।

इधर मीर साहब की बेगम उस सवार से कह रही थीं—तुमने खूब धता बतायी।

उसने जवाब दिया—ऐसे गावदियो को तो चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अक्ल और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली। अब भूल कर भी घर न रहेंगे।

+ + +

दूसरे दिन से दोनों मित्र मुंह अँधेरे घर से निकल खड़े होते। बगल में एक छोटी-सी दरी दबाये, डिब्बे में गिलोरियाँ भरे, गोमती पार

कर एक पुरानी वीरान मसजिद में चले जाते, जिसे शायद नवाब आसफ-उद्दौला ने बनवाया था। रास्ते में तम्बाकू, चिलम और मदरिया ले लेते, और मसजिद में पहुंच, दरी बिछा, हुक्का भर, शतरंज खेलने बैठ जाते थे। फिर उन्हें दीन-दुनिया की फिक्र न रहती थी। 'किश्त', 'शह' आदि दो-एक शब्दों के सिवा मुँह से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होता। दोपहर को जब भूख मालूम होती तो दोनों मित्र किसी नानबाई की दूकान पर जा कर खाना खा आते और एक चिलम हुक्का पी कर फिर संग्राम-क्षेत्र में डट जाते। कभी-कभी तो उन्हें भोजन का भी खयाल न रहता था।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। कम्पनी की फौजें लखनऊ की तरफ बढ़ी चली आती थीं। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग बाल-बच्चों को ले-ले कर देहातों में भाग रहे थे। पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इसकी जरा भी फिक्र न थी। वे घर से आते तो गलियों में से हो कर। डर था कि कहीं किसी बादशाही मुलाजिम की निगाह न पड़ जाय, नहीं तो बेगार में पकड़े जायँ। हजारों रुपये सालाना की जागीर मुफ्त में ही हजम करना चाहते थे।

एक दिन दोनों मित्र मसजिद के खंडहर में बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे। मिर्जा की बाजी कुछ कमजोर थी। मीर साहब उन्हें किश्त पर किश्त दे रहे थे। इतने में कम्पनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिये। यह गोरों की फौज थी जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिए आ रही थी।

मीर साहब बोले—अँगरेजी फौज आ रही है, खुदा खैर करे।

मिर्जा –आने दीजिए, किश्त बचाइए। लो यह किश्त !

मीर—जरा देखना चाहिए; यहीं आड़ में खड़े हो जायँ।

दूसरे दिन मुँह अन्धेरे निकल कर दोनों मित्र गोमती के पार एक वीरान मसजिद की ओर चले।

मिर्जा––देख लीजिएगा, जल्दी क्या है, फिर किश्त !

मीर––तोपखाना भी है। कोई पांच हजार ग्रादमी होंगे। कैसे जवान हैं। लाल बंदरों से मुँह हैं। सूरत देख कर खौफ मालूम होता है।

मिर्जा––जनाब, हीले न कीजिए। ये चकमे किसी ग्रौर को दीजिएगा––यह किश्त !

मीर––ग्राप भी ग्रजीब ग्रादमी हैं। यहाँ तो शहर पर ग्राफत ग्रायी हुई है, ग्रौर ग्रापको किश्त की सूझी है ! कुछ इसकी खबर है कि शहर घिर गया तो घर कैसे चलेंगे ?

मिर्जा––जब घर चलने का वक्त ग्रायेगा तो देखी जाएगी––यह किश्त, बस ग्रब की शह में मात है।

फौज निकल गयी। दस बजे का समय था। फिर बाजी बिछ गयी। मिर्जा बोले––ग्राज खाने की कैसी ठहरेगी ?

मीर––ग्रजी, ग्राज तो रोजा है। क्या ग्रापको भूख ज्यादा मालूम होती है ?

देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी, पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इसकी जरा भी फिक्र नहीं थी ।

मिर्जा—जी नहीं। शहर में जाने क्या हो रहा है ?

मीर—शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खा खाकर आराम से सो रहे होंगे। हुजूर नवाब साहब भी ऐशगाह में होंगे।

दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे तो तीन बज गये। अब की मिर्जा की बाजी कमजोर थी। चार का गजर बज रहा था कि फौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली शाह पकड़ लिये गये थे, और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिये जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूँद भी खून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शान्ति से, इस तरह

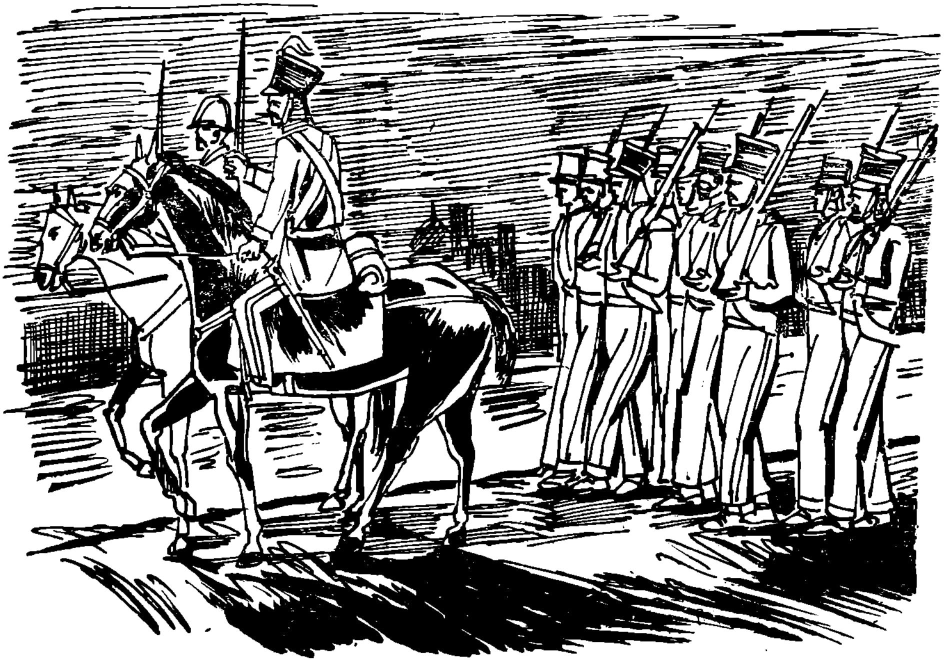

खून बहे बिना न हुई होगी। यह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यह कायरपन था जिस पर बड़े से बड़े कायर आँसू बहाते हैं। अवध के विशाल देश का नवाब बन्दी बना चला जाता था और लखनऊ ऐश की नींद में मस्त था। यह राजनीतिक अधःपतन की चरम सीमा थी।

मिर्जा ने कहा—हुजूर, नवाब को जालिमों ने कैद कर लिया है।

मीर—होगा, यह लीजिए शह !

मिर्जा—जनाब, जरा ठहरिए। इस वक्त इधर तबीयत नहीं लगती। बेचारे नवाब साहब इस वक्त खून के आँसू रो रहे होंगे।

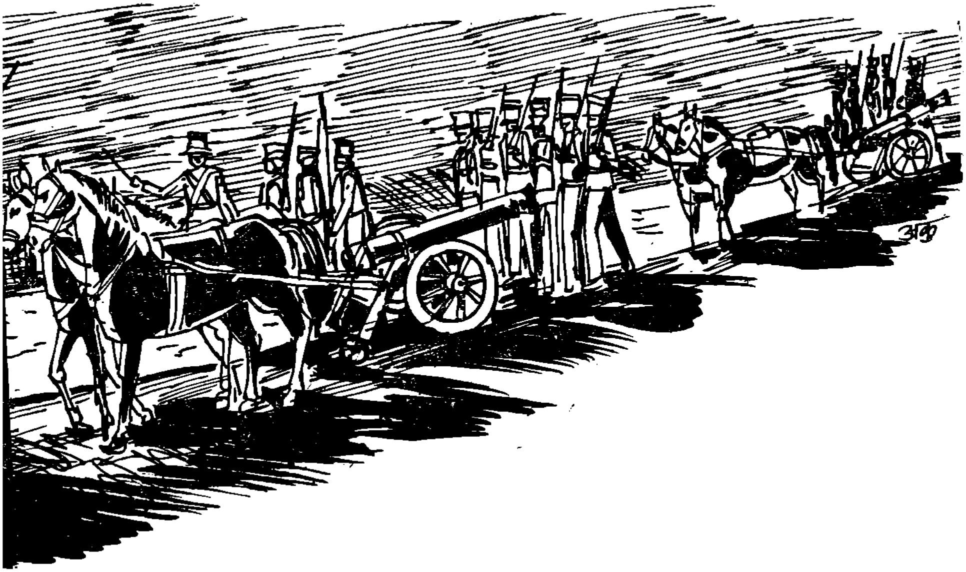

मीर—रोया ही चाहें, यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा ? यह किश्त ।

मिर्जा—किसी के दिन बराबर नहीं जाते । कितनी दर्दनाक हालत है ।

मीर——हाँ, सो तो है ही——यह लो, फिर किश्त ! बस अब की किश्त में मात है । बच नहीं सकते ।

मिर्जा——खुदा की कसम, आप बड़े बेदर्द हैं । इतना बड़ा हादसा देख कर भी आपको दुःख नहीं होता । हाय, गरीब वाजिदअली शाह !

मीर——पहले अपने बादशाह को तो बचाइए, फिर नवाब का मातम कीजिएगा । यह किश्त और मात ! लाना हाथ !

× × ×

बादशाह को लिये हुए सेना सामने से निकल गयी । उनके जाते ही मिर्जा ने फिर बाजी बिछा ली । हार की चोट बुरी होती है । मीर ने कहा——आइए, नवाब के मातम में एक मरसिया कह डालें । लेकिन मिर्जा की राज्यभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी । वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो गये थे ।

शाम हो गयी। खंडहर में चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया। अबाबीलें आ-आ कर अपने घोंसलों में चिपटीं। पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे। मानो दोनों खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों। मिर्जा जी तीन बाजियाँ लगातार हार चुके थे; इस चौथी बाजी का रंग भी अच्छा न था। वह बार-बार जीतने का दृढ़ निश्चय कर सँभल कर खेलते थे लेकिन एक न एक चाल ऐसी बेढब आ पड़ती थी जिससे बाजी खराब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और उग्र होती जाती थी।

उधर मीर साहब मारे उमंग के गजलें गाते थे; चुटकियाँ लेते थे, मानो कोई गुप्त धन पा गये हों। मिर्जा सुन-सुन कर झुँझलाते और हार की झेंप मिटाने के लिए उनकी दाद देते थे। ज्यों-ज्यों बाजी कम-जोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकलता जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुंझलाने लगे। 'जनाब, आप चाल न बदला कीजिए। यह क्या कि चाल चले और फिर उसे बदल दिया। जो कुछ चलना है एक बार चल दीजिए। यह आप मुहरे पर ही क्यों हाथ रखे रहते हैं! मुहरे छोड़ दीजिए। जब तक आपको चाल न सूझे, मुहरा छुइए ही नहीं। आप एक-एक चाल आध-आध घंटे में चलते हैं। इसकी सनद नहीं। जिसे एक चाल चलने में पाँच मिनट से ज्यादा लगे उसकी मात समझी जाय। फिर आपने चाल बदली? चुपके से मुहरा वहीं रख दीजिए।'

मीर साहब का फरजी पिटता था। बोले--मैंने चाल चली ही कब थी?

मिर्जा—आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहीं रख दीजिए—उसी घर में।

मीर—उसमें क्यों रखूं ? हाथ से मुहरा छोड़ा कब था ?

मिर्जा—मुहरा आप कयामत तक न छोड़ें, तो क्या चाल ही न होगी ? फरजी पिटते देखा तो धाँधली करने लगे।

मीर—धाँधली आप करते हैं। हार-जीत तकदीर से होती है। धाँधली करने से कोई नहीं जीतता।

मिर्जा—तो इस बाजी में आपकी मात हो गयी।

मीर—मुझे क्यों मात होने लगी ?

मिर्जा—तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए, जहाँ पहले रखा था।

मीर—वहाँ क्यों रखूं ? नहीं रखता।

मिर्जा—क्यों न रखिएगा ? आपको रखना होगा।

तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता, न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिर्जा बोले—किसी ने खान-दान में शतरंज खेली होती तब तो इसके कायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किये, आप शतरंज क्या खेलिएगा? रियासत और ही चीज है। जागीर मिल जाने ही से कोई रईस नहीं हो जाता!

मीर—क्या! घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे। यहाँ तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आते हैं!

मिर्जा—अजी जाइए भी, गाजीउद्दीन हैदर के यहाँ बावर्ची का काम करते-करते उम्र गुजर गयी। आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं।

मीर—क्यों अपने बुजुर्गों के मुंह पर कालिख लगाते हो—वे ही बावर्ची का काम करते होंगे। यहाँ तो हमेशा बादशाह के दस्तरख्वान पर खाना खाते चले आये हैं।

मिर्जा—अरे चल चरकटे, बहुत बढ़ कर बातें न कर!

मीर—जबान सँभालिए, वर्ना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ। यहाँ तो किसी ने आँखें दिखायीं कि उसकी आँखें निकालीं। है हौसला?

मिर्जा——आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर आइए, आज दो-दो हाथ हो जायँ, इधर या उधर।

मीर——तो यहां तुमसे दबने वाला कौन है ?

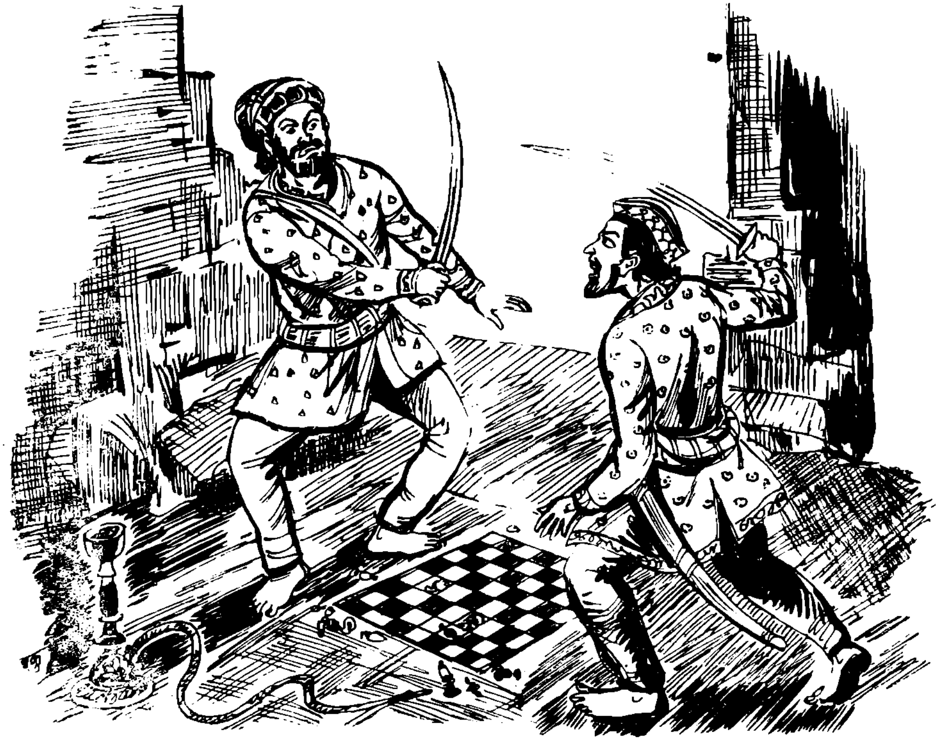

दोनों ने पैंतरे बदले, तलवारें चमकी, छपाछप की
आवाजें आने लगीं।

दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं। नवाबी जमाना था। सभी तलवार, पेशकब्ज, कटार वगैरह बांधते थे। दोनों विलासी थे, पर कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था। बादशाह के लिए क्यों मरें ? पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों ने पैंतरे बदले, तलवारें चमकीं, छपाछप की आवाजें आयीं। दोनों जख्मी हो कर गिरे, और दोनों ने वहीं तड़प-तड़प कर जानें दीं। अपने बादशाह के लिए उनकी आँखों से बूंद आँसू न निकला, उन्होंने शतरंज के वजीर की रक्षा में प्राण दे दिये।

\+ \+ \+ \+

अँधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे मानो इन वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे।

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खँडहर की टूटी हुई मेहराबें, गिरी हुई दीवारें और धूल-धूसरित मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थीं।

मुन्शी प्रेमचंद का सचित्र किशोर साहित्य

स्वामी विवेकानन्द
महाराणा प्रताप
अकबर महान
पंच परमेश्वर
शराब की दुकान
ईदगाह
बड़े घर की बेटी
नमक का दरोगा
गुल्ली डण्डा
दो [illegible]लों की कथा
ठाकुर का कुआ
बूढ़ी काकी
सुज[illegible]न भगत
ममता
मन्दिर
पूस की रात
चमत्कार

मृतक भोज
सत्याग्रह
दूध का दाम
मुक्ति मार्ग
शंखनाद
सद्गति
घरजमाई
मर्यादा की वेदी
दो भाई
मंत्र
राजा हरदौल
राजा मानसिंह
गोपालकृष्ण गोखले
माँ
श[illegible]
क्षमा

शतरंज के खिलाड़ी
बलिदान की वेदी
पछतावा
खुदाई फौजदार
रानी सारन्धा
कजाकी
महातीर्थ
बालक
बड़े भाई साहब
समरयात्रा
न्याय
स्वामिनी
झाँकी
जंगल की कहानियाँ
नशा
स्मृति का पुजारी